

## Chapter पचास

### कृष्ण द्वारा द्वारकापुरी की स्थापना

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह कृष्ण ने जरासन्ध को युद्ध में सत्रह बार हराकर द्वारकापुरी का निर्माण किया।

कंस के मारे जाने के बाद उसकी दोनों रानियाँ—अस्ति तथा प्राप्ति अपने पिता जरासन्ध के घर चली गईं और शोकसन्तप्त होकर उससे बतलाया कि किस तरह कृष्ण ने उन्हें विधवा बना दिया है। यह सुनकर राजा जरासन्ध क्रुद्ध हुआ। उसने पृथ्वी से यदुओं का सफाया करने का व्रत लिया और

मथुरा पर घेरा डाल देने के लिए विशाल सेना एकत्र की। जब कृष्ण ने जरासन्ध को हमला करते देखा तो उन्होंने इस विश्व में अपने अवतार लेने के कारणों पर विचार किया और पृथ्वी के भारस्वरूप जरासन्ध की सेना का संहार करने का निश्चय किया।

तभी दो तेजस्वी रथ प्रकट हुए जो सारथियों तथा साज-सामान से युक्त थे और उनमें भगवान् के निजी आयुध थे। यह देखकर कृष्ण ने बलदेव से कहा, “हे भ्राता! अब जरासन्ध मथुरापुरी पर आक्रमण कर रहा है, अतः अपने रथ पर सवार हो जाइये और चलिये, हम दोनों शत्रु की सेना का विध्वंस करें।” दोनों भाई अपने अपने हथियार लेकर अपने अपने रथों पर सवार हुए और नगर से बाहर चले गए।

भगवान् कृष्ण ने अपने प्रतिद्वन्दी की सेना के सामने पहुँचकर अपना शंख बजाया जिससे शत्रुओं के हृदय में भय व्याप्त हो गया। राजा जरासन्ध ने अपने सैनिकों, रथों इत्यादि से कृष्ण तथा बलराम को घेर लिया। नगर की स्त्रियाँ अपने अपने घरों की छतों पर चढ़ गईं और दोनों प्रभुओं को न देखकर अत्यन्त दुखी हुईं। तब कृष्ण अपने धनुष में टंकार देकर शत्रु-सैनिकों पर बाण बरसाने लगे। जरासन्ध की अपार सेना शीघ्र ही विनष्ट हो गई।

बलदेव ने जरासन्ध को बन्दी बना लिया और उसे रस्सियों से बाँधने ही जा रहे थे कि कृष्ण ने बलदेव को ऐसा करने से रोक दिया। उन्होंने तर्क किया कि जरासन्ध फिर से सेना एकत्र करके फिर से लड़ाई करने आयेगा। इससे पृथ्वी का भार दूर करने का कृष्ण का लक्ष्य पूरा हो सकेगा। बन्धन से मुक्त किये जाने पर जरासन्ध मगध लौट गया और अपनी हार का बदला लेने के लिए उसने तपस्या करने की ठानी। अन्य राजाओं ने उसे सलाह दी कि यह हार उसके कर्म का फल है। इस तरह कहे जाने पर जरासन्ध बोझिल मन किये अपने साम्राज्य में लौट आया।

जब श्रीकृष्ण मथुरावासियों से मिले तो वे सब मिलकर प्रसन्नता व्यक्त करने लगे और विजय-गीत गाने तथा उत्सव मनाने की तैयारी करने लगे। भगवान् ने वे सारे आभूषण तथा बहुमूल्य सामान, जिन्हें युद्ध-क्षेत्र से एकत्र किया गया था, लाकर महाराज उग्रसेन को भेंट कर दिये।

जरासन्ध ने मथुरा के यादवों पर सत्रह बार आक्रमण किया और हर बार उसकी सेना का विध्वंस होता रहा। जब जरासन्ध ने अठारहवीं बार आक्रमण करने की तैयारी की तो कालयवन नामक एक

योद्धा, जो अपने योग्य प्रतिद्वन्दी की तलाश में था, नारद मुनि द्वारा भेजा जा कर यादवों से लड़ने के लिए आया। कालयवन ने तीन करोड़ सैनिक लेकर यादवों की राजधानी पर घेरा डाल दिया। भगवान् कृष्ण इस आक्रमण से चिन्तित हुए क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि जरासन्ध का आगमन आसन्न है और एक ही साथ दो शत्रुओं के आक्रमण से यादवगण संकट में पड़ सकते हैं। अतः भगवान् ने यादवों के लिए समुद्र के भीतर एक सुरक्षित अद्भुत नगरी का निर्माण कराया और तब योगशक्ति से उन सबों को वहाँ पहुँचा दिया। इस नगरी में चारों वर्णों के लोग बसे थे और किसी को भी भूख-प्यास नहीं सताती थी। इन्द्र आदि सारे देवताओं ने भगवान् कृष्ण को वे ही ऐश्वर्य भेंट किये जो उन्हें अपना पद प्राप्त करते समय कृष्ण से प्राप्त हुए थे।

जब कृष्ण ने देख लिया कि सारी प्रजा सुरक्षित ढंग से बस गई है, तो उन्होंने बलराम से विदा ली और निःशस्त्र होकर मथुरा से बाहर चले गये।

श्रीशुक उवाच

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ।  
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अस्तिः प्राप्तिः च—अस्ति तथा प्राप्ति; कंसस्य—कंस की; महिष्यौ—दो पटरानियाँ; भरत-ऋषभ—हे भरतवंशी के वीर ( परीक्षित ); मृते—मार डाले जाने पर; भर्तरि—अपने पति के; दुःख—दुख से; आर्ते—शोकमग्न; ईयतुः स्म—चली गई; पितुः—अपने पिता के; गृहान्—घरों।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब कंस मार डाला गया तो हे भरतर्षभ, उसकी दो पटरानियाँ अस्ति तथा प्राप्ति अत्यन्त दुखी होकर अपने पिता के घर चली गई।

पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते ।  
वेदयां चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

पित्रे—अपने पिता; मगध-राजाय—मगध के राजा; जरासन्धाय—जरासंध से; दुःखिते—दुखी; वेदयाम् चक्रतुः—उन्होंने कह सुनाया; सर्वम्—सारे; आत्म—अपने; वैधव्य—विधवा होने का; कारणम्—कारण।

दुखी रानियों ने अपने पिता मगध के राजा जरासन्ध से सारा हाल कह सुनाया कि वे किस तरह विधवा हुईं।

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ।  
अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥

**शब्दार्थ**

सः—वह, जरासन्ध; तत्—उस; अप्रियम्—बुरे समाचार को; आकर्ण्य—सुनकर; शोक—शोक; अमर्ष—तथा असह्य क्रोध; युतः—अनुभव करते हुए; नृप—हे राजा; अयादवीम्—यादवों से विहीन; महीम्—पृथ्वी को; कर्तुम्—करने के लिए; चक्रे—किया; परमम्—अत्यधिक; उद्यमम्—प्रयत्न।

हे राजन्, यह अप्रिय समाचार सुनकर जरासन्ध शोक तथा क्रोध से भर गया और पृथ्वी को यादवों से विहीन करने के यथासम्भव प्रयास में जुट गया।

अक्षौहिणीभिर्विशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ।  
यदुराजधानीं मथुरां न्यरुधत्सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**

अक्षौहिणीभिः—अक्षौहिणियों से ( एक अक्षौहिणी में २१,८७० हाथी, २१,८७० रथ, ६५,६१० घुड़सवार तथा १,०९,३५० पैदल सैनिक होते हैं ); विशत्या—बीस; तिसृभिः—तीन और; संवृतः—घेर लिया; यदु—यदुवंश की; राजधानीम्—राजधानी; मथुराम्—मथुरा को; न्यरुधत्—घेरा डाल दिया; सर्वतः दिशम्—ओन् अल्ल् सिदेस्।

उसने तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर यदुओं की राजधानी मथुरा के चारों ओर घेरा डाल दिया।

तात्पर्य : एक अक्षौहिणी की संख्या ऊपर 'शब्दार्थ' में दी गई है। प्राचीन काल में अक्षौहिणी सेना की मानक इकाई थी।

निरीक्ष्य तद्वलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ।  
स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥  
चिन्तयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः ।  
तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**

निरीक्ष्य—देखकर; तत्—उस ( जरासन्ध ) के; बलम्—सैनिक-शक्ति; कृष्णः—कृष्ण; उद्वेलम्—सीमाओं को लाँघकर; इव—सदृश; सागरम्—समुद्र; स्व—अपनी; पुरम्—नगरी, मथुरा को; तेन—उससे; संरुद्धम्—घिरी; स्व-जनम्—अपनी प्रजा को; च—तथा; भय—भय से; आकुलम्—व्याकुल; चिन्तयाम् आस—सोचा; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि ने; कारण—सभी के कारण; मानुषः—मनुष्य रूप में प्रकट होकर; तत्—उस; देश—स्थान; काल—तथा समय के; अनुगुणम्—उपयुक्त; स्व-अवतार—इस संसार में अपने अवतरण के; प्रयोजनम्—कारण के विषय में।

यद्यपि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण इस संसार के आदि-कारण हैं किन्तु जब वे इस पृथ्वी पर अवतरित हुए तो उन्होंने मनुष्य की भूमिका निबाही। अतः जब उन्होंने देखा कि जरासन्ध की सेना ने उनकी नगरी को उसी तरह घेर लिया है, जिस तरह महासागर अपने किनारों को तोड़कर बहने लगता है और जब उन्होंने देखा कि यह सेना उनकी प्रजा में भय उत्पन्न कर रही है, तो

भगवान् ने विचार किया कि देश, काल तथा उनके वर्तमान अवतार के विशिष्ट प्रयोजन के अनुकूल उनकी उपयुक्त प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए।

**तात्पर्य :** आचार्यों ने इंगित किया है कि भगवान् को जरासन्ध तथा उसके सैनिकों के आक्रमण की परवाह करने की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु जैसाकि यहाँ पर कहा गया है, श्रीकृष्ण मनुष्य का अभिनय कर रहे थे ( *कारण-मानुषः* ) और उन्होंने यह अभिनय अच्छी तरह निबाहा। यह अभिनय लीला कहलाता है, जो कि अपने भक्तों के आनन्द के हेतु भगवान् द्वारा आध्यात्मिक लीलाओं का अभिनय है। यद्यपि भगवान् की लीलाओं से सामान्य व्यक्ति हक्के-बक्के रह जाते हैं किन्तु भक्तों को उनके इस अननुकरणीय आचरण से बेहद प्रसन्नता होती है। इस प्रकार श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि श्रीकृष्ण ने सोचा कि “मैं जरासन्ध को किस तरह परास्त करूँ? क्या मैं उसकी सेना को मार डालूँ और जरासन्ध को न मारूँ? या फिर जरासन्ध को मारकर उसकी सेना स्वयं ले लूँ? या शायद इन दोनों का वध कर दूँ?” भगवान् कृष्ण जिस निर्णय पर पहुँचे वह अगले श्लोकों में वर्णित है।

हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ।

मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥

अक्षौहिणीभिः सङ्ख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः ।

मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

हनिष्यामि—मैं मार डालूँगा; बलम्—सेना को; हि—निश्चय ही; एतत्—इस; भुवि—पृथ्वी पर; भारम्—भार को; समाहितम्—एकत्र; मागधेन—मगध के राजा, जरासन्ध द्वारा; समानीतम्—लाया गया; वश्यानाम्—अधीन; सर्व—सभी; भू-भुजाम्—राजाओं को; अक्षौहिणीभिः—अक्षौहिणियों में; सङ्ख्यातम्—गिनी जाने वाली; भट—पैदल सैनिकों; अश्व—घोड़े; रथ—रथ; कुञ्जरैः—तथा हाथियों से युक्त; मागधः—जरासन्ध; तु—किन्तु; न हन्तव्यः—नहीं मारा जाना चाहिए; भूयः—फिर से; कर्ता—करेगा; बल—सेना ( एकत्र करने के लिए ); उद्यमम्—प्रयास।

[ भगवान् ने सोचा ] : चूँकि पृथ्वी पर इतना भार है, अतः मैं जरासन्ध की इस सेना को विनष्ट कर दूँगा जिसमें अक्षौहिणियों पैदल सैनिक, घोड़े, रथ तथा हाथी हैं, जिसे मगध के राजा ने अपने अधीनस्थ राजाओं से बटोरकर यहाँ ला खड़ा किया है। किन्तु मुझे जरासन्ध को नहीं मारना चाहिए क्योंकि भविष्य में वह निश्चित रूप से दूसरी सेना जोड़ लेगा।

**तात्पर्य :** काफी विचार करने के बाद कृष्ण ने तय किया कि चूँकि वे असुरों को विनष्ट करने के लिए पृथ्वी में अवतरित हुए हैं और चूँकि जरासन्ध सारे असुरों को भगवान् के समक्ष लाने के लिए

उत्साहित था, इसलिए जरासन्ध को जीवित और व्यस्त किये रखना अधिक उपयुक्त होगा।

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ।

संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

एतत्—इस; अर्थः—प्रयोजन के लिए; अवतारः—अवतार; अयम्—यह; भू—पृथ्वी का; भार—बोझ; हरणाय—हटाने के लिए; मे—मेरे द्वारा; संरक्षणाय—पूरी सुरक्षा के लिए; साधूनाम्—साधुओं की; कृतः—किया गया; अन्येषाम्—अन्यों (असाधुओं) का; वधाय—मारने के लिए; च—तथा।

मेरे इस अवतार का यही प्रयोजन है—पृथ्वी के भार को दूर करना, साधुओं की रक्षा करना

और असाधुओं का वध करना।

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया ।

विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

अन्यः—दूसरा; अपि—भी; धर्म—धर्म की; रक्षायै—रक्षा के लिए; देहः—शरीर; संभ्रियते—धारण किया जाता है; मया—मेरे द्वारा; विरामाय—रोकने के लिए; अपि—भी; अधर्मस्य—अधर्म का; काले—समय के साथ; प्रभवतः—प्रधान बनने पर; क्वचित्—जब भी।

मैं धर्म की रक्षा करने तथा जब जब समय के साथ अधर्म की प्रधानता होती है, तो उसका

अन्त करने के लिए भी अन्य शरीर धारण करता हूँ।

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात्सूर्यवर्चसौ ।

रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; ध्यायति—विचार करते हुए; गोविन्दे—भगवान् कृष्ण द्वारा; आकाशात्—आकाश से; सूर्य—सूर्य जैसे; वर्चसौ—तेज वाले; रथौ—दो रथ; उपस्थितौ—प्रकट हो गये; सद्यः—सहसा; स—सहित; सूतौ—सारथियों; स—सहित; परिच्छदौ—साज-सामान।

[ शुकदेव गोस्वामी ने कहा ] : जब भगवान् गोविन्द इस तरह सोच रहे थे तो सूर्य के समान

तेज वाले दो रथ आकाश से सहसा नीचे उतरे। वे सारथियों तथा साज-सज्जा से युक्त थे।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती मानते हैं कि ये रथ भगवान् के ही

धाम, वैकुण्ठ-लोक से नीचे आये थे। भगवान् के श्रद्धालु भक्त भगवान् की अद्वितीय प्रौद्योगिकी

देखकर अपार हर्ष प्राप्त करते हैं।

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ।  
दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥

**शब्दार्थ**

आयुधानि—हथियार; च—तथा; दिव्यानि—दिव्य; पुराणानि—पुराने; यदृच्छया—स्वतः; दृष्ट्वा—देखकर; तानि—उनको;  
हृषीकेशः—भगवान् कृष्ण; सङ्कर्षणम्—बलराम से; अथ—तब; अब्रवीत्—बोले ।

उसी समय भगवान् के दिव्य हथियार भी स्वतः उनके समक्ष प्रकट हो गये। इन्हें देखकर  
इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण ने भगवान् संकर्षण से कहा।

पश्याय व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ।  
एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥  
एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ।  
त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेभारमपाकुरु ॥ १४ ॥

**शब्दार्थ**

पश्य—देखिये; आर्य—सम्मान्य; व्यसनम्—खतरा, संकट; प्राप्तम्—आया हुआ; यदूनाम्—यदुओं के लिए; त्वा—तुम्हारे  
द्वारा; अवताम्—सुरक्षित; प्रभो—हे स्वामी; एषः—यह; ते—तुम्हारा; रथः—रथ; आयातः—आ चुका है; दयितानि—प्रिय;  
आयुधानि—हथियार; च—तथा; एतत्—अर्थम्—इस प्रयोजन के लिए; हि—निस्सन्देह; नौ—हमारा; जन्म—जन्म; साधूनाम्—  
साधु-भक्तों का; ईश—हे प्रभु; शर्म—लाभ; कृत्—करते हुए; त्रयः-विंशति—तेईस; अनीक—सेनाएँ; आख्यम्—के नाम से;  
भूमेः—पृथ्वी का; भारम्—भार; अपाकुरु—हटाइये।

[ भगवान् ने कहा ] : हे पूज्य ज्येष्ठ भ्राता, आप अपने आश्रित यदुओं पर आये हुए इस  
संकट को तो देखिये! और हे प्रभु, यह भी देखिये कि आपका निजी रथ तथा आपकी पसन्द के  
हथियार आपके समक्ष आ चुके हैं। हे प्रभु! हमने जिस उद्देश्य से जन्म लिया है, वह अपने भक्तों  
के कल्याण को सुरक्षित करना है। कृपया अब इन तेईस सैन्य-टुकड़ियों के भार को पृथ्वी से  
हटा दीजिये।

एवं सम्मन्त्र्य दाशाहीं दंशितौ रथिनौ पुरात् ।  
निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसा वृतौ ॥ १५ ॥

**शब्दार्थ**

एवम्—इस तरह; सम्मन्त्र्य—आमंत्रित करके; दाशाहीं—दशार्ह के दो वंशज ( कृष्ण तथा बलराम ); दंशितौ—कवच पहनकर;  
रथिनौ—रथों पर आरूढ़ होकर; पुरात्—नगरी से; निर्जग्मतुः—बाहर गये; स्व—अपने; आयुध—हथियार; आढ्यौ—  
चमचमाते; बलेन—सेना द्वारा; अल्पीयसा—अत्यन्त लघु; वृतौ—साथ में लेकर।

भगवान् कृष्ण द्वारा अपने भाई को इस तरह आमंत्रित करने के बाद, दोनों दशार्ह कृष्ण  
तथा बलराम कवच पहन कर और अपने अपने चमचमाते हथियारों को प्रदर्शित करते हुए अपने  
रथों पर चढ़कर नगरी के बाहर चले गये। उनके साथ सैनिकों की छोटी-सी टुकड़ी ही थी।

शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ।  
ततोऽभूत्परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः ॥ १६ ॥

### शब्दार्थ

शङ्खम्—अपना शंख; दध्मौ—बजाया; विनिर्गत्य—बाहर जाकर; हरिः—कृष्ण ने; दारुक-सारथिः—जिनका सारथी दारुक था; ततः—तत्पश्चात्; अभूत्—उठी; पर—शत्रु के; सैन्यानाम्—सैनिकों के; हृदि—हृदयों में; वित्रास—भय से; वेपथुः—कंपकंपी ।

जब भगवान् कृष्ण दारुक द्वारा हाँके जा रहे अपने रथ पर चढ़कर नगरी से बाहर आ गये तो उन्होंने अपना शंख बजाया । इससे शत्रु-सैनिकों के हृदय भय से काँपने लगे ।

तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ।  
न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ।  
गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥ १७ ॥

### शब्दार्थ

तौ—दोनों से; आह—कहा; मागधः—जरासंध ने; वीक्ष्य—देखकर; हे कृष्ण—हे कृष्ण; पुरुष-अधम—पुरुषों में सबसे निम्न; न—नहीं; त्वया—तुमसे; योद्धुम्—लड़ने के लिए; इच्छामि—इच्छा करता हूँ; बालेन—बालक के साथ; एकेन—अकेला; लज्जया—शर्म से; गुप्तेन—छिपी; हि—निस्सन्देह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; मन्द—हे मूर्ख; न योत्स्ये—नहीं लड़ूँगा; याहि—चले जाओ; बन्धु—सम्बन्धियों का; हन्—अरे वध करने वाले ।

जरासन्ध ने दोनों की ओर देखा और कहा : अरे पुरुषों में अधम कृष्ण, मैं तुझसे अकेले नहीं लड़ना चाहता क्योंकि एक बालक से युद्ध करना लज्जा की बात होगी । अरे अपने को गुप्त रखने वाले मूर्ख, अपने सम्बन्धियों की हत्या करने वाले, तू भाग जा! मैं तुझसे युद्ध नहीं करूँगा ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने जरासन्ध के शब्दों की विवेचना इस प्रकार की है : पुरुषाधम को पुरुषा अधमा यस्मात्—कृष्ण, जिसके सामने सारे लोग अधम हैं—के रूप में समझा जा सकता है । दूसरे शब्दों में, यहाँ पर कृष्ण को “हे पुरुषोत्तम, या जीवों में श्रेष्ठ” के रूप में सम्बोधित किया जा रहा है । इसी तरह गुप्तेन कृष्ण का हर एक के हृदय में उपस्थित रहकर भौतिक दृष्टि से अदृश्य रहने का सूचक है । त्वया मन्द को संस्कृत व्याकरण के अनुसार त्वया आमन्द में विच्छेद किया जा सकता है । तब जरासन्ध का अभिप्राय होगा कि कृष्ण मूर्ख नहीं अपितु अत्यन्त सतर्क हैं । जरासन्ध द्वारा बन्धु शब्द का प्रयोग “सम्बन्धी” के अर्थ में हुआ है क्योंकि कृष्ण ने अपने मामा कंस का वध किया था । फिर भी बन्धु शब्द बन्ध क्रिया (बाँधना) से व्युत्पन्न है, अतः बन्धुहन् से “अज्ञान के बन्धन को नष्ट करने



वाला” अर्थ निकाला जा सकता है। इसी प्रकार याहि शब्द (जाइए) सूचित करता है कि कृष्ण को चाहिए कि जीवों के पास जाकर उन्हें कृष्णभावनाभावित बनने का आशीर्वाद दें।

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्रह ।  
हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्गाहि मां जहि ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; राम—हे बलराम; यदि—यदि; श्रद्धा—विश्वास; युध्यस्व—लड़ो; धैर्यम्—धैर्य; उद्रह—धारण करो; हित्वा—छोड़कर; वा—या तो; मत्—मेरे; शरैः—बाणों से; छिन्नम्—खण्ड खण्ड होकर; देहम्—तुम्हारा शरीर; स्वः—स्वर्ग को; याहि—जाओ; माम्—( या फिर ) मुझको; जहि—मारो।

रे बलराम, तू धैर्य सँजो करके मुझसे लड़, यदि तू सोचता है कि तू ऐसा कर सकता है। या तो तू मेरे बाणों के द्वारा खण्ड खण्ड होने से अपना शरीर त्याग और इस तरह स्वर्ग प्राप्त कर या फिर तू मुझे जान से मार।

तात्पर्य : आचार्य श्रीधर स्वामी के अनुसार जरासंध को सन्देह हो गया कि बलराम का शरीर अविनश्वर है इसलिए उसने यह विकल्प रखा कि बलराम उसका वध कर दें जो कदाचित अधिक व्यावहारिक हो।

#### श्रीभगवानुवाच

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ।  
न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; शूराः—वीर; विकत्थन्ते—डिंग मारते हैं; दर्शयन्ति—दिखलाते हैं; एव—केवल; पौरुषम्—अपना पराक्रम; न गृह्णीमः—हम नहीं मानते; वचः—शब्द; राजन्—हे राजन्; आतुरस्य—मानसिक रूप से व्याकुल के; मुमूर्षतः—मरने वाले।

भगवान् ने कहा : असली वीर केवल डिंग नहीं मारते अपितु अपने कार्य के द्वारा पराक्रम का प्रदर्शन करते हैं। जो चिन्ता से पूर्ण हो और मरना चाहता हो उसके शब्दों को हम गम्भीरता से नहीं ले सकते।

#### श्रीशुक उवाच

जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ  
महाबलौघेन बलीयसावृनोत् ।  
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी

सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २० ॥

**शब्दार्थ**

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; जरा-सुतः—जरा का पुत्र; तौ—वे दोनों; अभिसृत्य—पास जाकर; माधवौ—मधु के वंशज; महा—विशाल; बल—सैनिक-शक्ति की; ओघेन—बाढ़ से; बलीयसा—बलवान; आवृणोत्—घेर लिया; स—सहित; सैन्य—सैनिकों के; यान—रथ; ध्वज—झंडे; वाजि—घोड़े; सारथी—रथ हाँकने वाले; सूर्य—सूर्य; अनलौ—तथा अग्नि; वायुः—वायु; इव—सदृश; अभ्र—बादलों से; रेणुभिः—धूल के कणों से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जिस तरह वायु बादलों से सूर्य को या धूल से अग्नि को ढक लेती है उसी तरह जरा का पुत्र, मधु के दो वंशजों की ओर चल पड़ा और उसने अपनी विशाल सेनाओं से उन्हें तथा उनके सैनिकों, रथों, पताकाओं, घोड़ों तथा सारथियों को घेर लिया।

तात्पर्य : आचार्य श्रीधर इंगित करते हैं कि बादल सूर्य को ढकते से प्रतीत होते हैं, वास्तव में सूर्य तो विस्तृत आकाश में चमकता रहता है। न ही धूल की पतली परत से अग्नि की शक्ति प्रभावित होती है। इसी तरह जरासंध की सैन्य-शक्ति का “आवरण” केवल ऊपरी था।

सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथा-

वलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ।

स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं

समाश्रिताः सम्मुमुहुः शुचार्दितः ॥ २१ ॥

**शब्दार्थ**

सुपर्ण—गरुड़; ताल—तथा ताड़ ( चिह्नों ) से युक्त; ध्वज—झंडों से; चिह्नितौ—अंकित; रथौ—दोनों रथ; अलक्षयन्त्यः—न पहचान पाती हुई; हरि-रामयोः—कृष्ण तथा बलराम के; मृधे—युद्ध में; स्त्रियः—स्त्रियाँ; पुर—नगरी की; अट्टालक—अटारियों; हर्म्य—प्रासादों; गोपुरम्—तथा द्वारों पर; समाश्रिताः—चढ़कर; सम्मुमुहुः—मूर्च्छित हो गई; शुचा—शोक से; अर्दिताः—पीड़ित।

स्त्रियाँ अटारियों, महलों तथा नगर के ऊँचे द्वारों पर खड़ी हुई थीं। जब उन्हें कृष्ण तथा बलराम के रथ नहीं दिखाई पड़े, जिनकी पहचान गरुड़ तथा ताड़-वृक्ष के प्रतीकों से चिह्नित पताकाओं से होती थी, तो वे शोकाकुल होकर मूर्च्छित हो गईं।

तात्पर्य : यहाँ पर स्त्रियों का विशेष उल्लेख है क्योंकि कृष्ण तथा बलराम के प्रति उनकी असाधारण आसक्ति थी।

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः

शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ।

स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं

व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २२ ॥

## शब्दार्थ

हरिः—कृष्ण; पर—शत्रु की; अनीक—सेनाओं के; पयः—मुचाम्—( जो ) बादलों ( की तरह थे ); मुहुः—बारम्बार;  
शिलीमुख—उनके बाणों के; अति—अत्यधिक; उल्बण—भयावनी; वर्ष—वर्षा से; पीडितम्—पीड़ित; स्व—अपनी;  
सैन्यम्—सेना को; आलोक्य—देखकर; सुर—देवताओं; असुर—तथा असुरों द्वारा; अर्चितम्—पूजित; व्यस्फूर्जयत्—टंकार  
किया; शार्ङ्ग—शार्ङ्ग नामक; शर-असन—अपना धनुष; उत्तमम्—उत्तम ।

अपने चारों ओर बादलों जैसी विशाल शत्रु सेनाओं के बाणों की भयानक तथा निर्मम वर्षा से अपनी सेना को पीड़ित देखकर भगवान् हरि ने अपने उस उत्तम धनुष शार्ङ्ग पर टंकार की जो देवताओं तथा असुरों दोनों के द्वारा पूजित है ।

गृह्णन्निशङ्गादथ सन्दधच्छरान्

विकृष्य मुञ्चन्शितबाणपूगान् ।

निघ्नन्प्रथान्कुञ्जरवाजिपत्तीन्

निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २३ ॥

## शब्दार्थ

गृह्णन्—निकालते हुए; निशङ्गात्—तरकस से; अथ—तत्पश्चात्; सन्दधत्—स्थिर करते हुए; शरान्—बाणों को; विकृष्य—  
खींचकर; मुञ्चन्—छोड़ते हुए; शित—तीक्ष्ण; बाण—बाणों की; पूगान्—बाढ़; निघ्नन्—प्रहार करते हुए; रथान्—रथों;  
कुञ्जर—हाथियों; वाजि—घोड़ों; पत्तीन्—तथा पैदल सिपाहियों को; निरन्तरम्—लगातार; यद्वत्—की तरह; अलात-चक्रम्—  
आग का गोला, लुकाठी ।

भगवान् कृष्ण ने अपने तरकस से तीर निकाले, उन्हें प्रत्यंचा ( धनुष की डोरी ) पर स्थित किया ( चढ़ाया ), डोरी खींची और तीक्ष्ण बाणों की झड़ी लगा दी जिसने शत्रु के रथों, हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सिपाहियों पर जाकर वार किया । भगवान् अपने तीरों को अलात-चक्र की तरह छोड़ रहे थे ।

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतु-

रनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ।

रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः

पदायतश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २४ ॥

## शब्दार्थ

निर्भिन्न—फटे हुए; कुम्भाः—माथे का गण्डस्थल; करिणः—हाथी; निपेतुः—गिर पड़े; अनेकशः—एक बार में कई कई;  
अश्वाः—घोड़े; शर—बाणों से; वृक्ण—कटे हुए; कन्धराः—गर्दनें; रथाः—रथ; हत—मारे गये; अश्व—घोड़े; ध्वज—  
पताकाएँ; सूत—सारथी; नायकाः—तथा नायक ( स्वामी ); पदायतः—पैदल सैनिक; छिन्न—कटी हुई; भुज—भुजाएँ; ऊरु—  
जाँघें; कन्धराः—तथा कंधे ।

हाथी धराशायी हो गये, उनके माथे फट गये, कटी गर्दनों वाले सेना के घोड़े गिर गये, रथ घोड़ों, झंडों, सारथियों तथा स्वामियों समेत टूट-फूटकर गिर गये और कटी हुई भुजाओं, जाँघों

तथा कन्धों वाले पैदल सिपाहियों ने दम तोड़ दिए।

सञ्छिद्यमानद्विपदेभवाजिना-

मङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ।

भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा

हतद्विपद्वीपहय ग्रहाकुलाः ॥ २५ ॥

करोरुमीना नरकेशशैवला

धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसङ्कुलाः ।

अच्छूरिकावर्तभयानका महा-

मणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥ २६ ॥

प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे

मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ।

विनिघ्नतारीन्मुषलेन दुर्मदान्

सङ्कर्षणेनापरीमेयतेजसा ॥ २७ ॥

बलं तदङ्गार्णवदुर्गाभैरवं

दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ।

क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयो-

विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २८ ॥

### शब्दार्थ

सञ्छिद्यमान—खण्ड खण्ड होकर; द्वि-पद—दो पैर वाले ( मनुष्य ); इभ—हाथी; वाजिनाम्—तथा घोड़ों के; अङ्ग—अंगों से; प्रसूताः—बहते हुए; शतशः—सैकड़ों; असृक्—रक्त की; आप-गः—नदियाँ; भुज—बाँहें; अहयः—सर्पों की तरह; पूरुष—मनुष्यों की; शीर्ष—सिर; कच्छपाः—कछुवों की तरह; हत—मृत; द्विप—हाथी; द्वीप—द्वीपों की तरह; हय—तथा घोड़ों से; ग्रह—घड़ियालों की तरह; आकुलाः—पूरित; कर—हाथ; ऊरु—तथा जाँघें; मीनः—मछलियों की तरह; नर—मनुष्य के; केश—बाल; शैवलाः—सिवार की तरह; धनुः—धनुष; तरङ्ग—लहरों की तरह; आयुध—तथा हथियार; गुल्म—झाड़ियों के कुंज की तरह; सङ्कुलाः—एकत्रित; अच्छूरिका—रथ के पहिए; आवर्त—भँवरों की तरह; भयानकाः—भयावनी; महा-मणि—बहुमूल्य मणियाँ; प्रवेक—उत्तम; आभरणा—तथा गहने; अश्म—पत्थरों की तरह; शर्कराः—तथा बालू; प्रवर्तिताः—बाहर निकालते हुए; भीरु—कायर के लिए; भय-आवहाः—डराने वाले; मृधे—युद्धभूमि में; मनस्विनाम्—बुद्धिमानों के लिए; हर्ष-करीः—हर्ष प्रदान करने वाले; परस्परम्—एक-दूसरे से; विनिघ्नता—प्रहार करते हुए; अरीन्—अपने शत्रुओं को; मुषलेन—अपने हलायुध से; दुर्मदान्—प्रचण्ड, क्रुद्ध; सङ्कर्षणेन—बलराम द्वारा; अपरिमेय—अथाह; तेजसा—बल से; बलम्—सैन्य-शक्ति; तत्—उस; अङ्ग—हे प्रिय ( राजा परीक्षित ); अर्णव—सागर की तरह; दुर्गा—अगाध; भैरवम्—तथा भयावना; दुरन्त—दुर्लभ; पारम्—सीमा; मगध-इन्द्र—मगध के राजा जरासन्ध द्वारा; पालितम्—देखभाल किया हुआ; क्षयम्—विनाश को; प्रणीतम्—प्राप्त हुआ; वसुदेव-पुत्रयोः—वसुदेव के पुत्रों के लिए; विक्रीडितम्—खेल; तत्—वह; जगत्—ब्रह्माण्ड; ईशयोः—प्रभुओं के लिए; परम्—परम।

युद्धभूमि में मनुष्यों, हाथियों तथा घोड़ों के खण्ड खण्ड हो जाने से रक्त की सैकड़ों नदियाँ

बह चलीं। इन नदियों में बाँहें सर्पों के तुल्य, मनुष्यों के सिर कछुवों की तरह, मृत हाथी द्वीपों

की तरह तथा मृत घोड़े घड़ियालों की तरह प्रतीत हो रहे थे। उनके हाथ तथा जाँघें मछली की

तरह, मनुष्यों के बाल सिवार की तरह, बाण लहरों की तरह तथा विविध हथियार झाड़ियों के

कुंज जैसे लग रहे थे। रक्त की नदियाँ इन सारी वस्तुओं से पड़ी थीं।

रथ के पहिए भयावनी भँवरों जैसे और बहुमूल्य मोती तथा आभूषण तेजी से बहती लाल रंग की नदियों में पत्थरों तथा रेत की तरह लग रहे थे, जो कायरों में भय और बुद्धिमानों में हर्ष उत्पन्न करने वाले थे। अपने हलायुध के प्रहारों से अत्यधिक शक्तिशाली बलराम ने मगधेन्द्र की सैनिक-शक्ति विनष्ट कर दी। यद्यपि यह सेना दुर्लभ सागर की भाँति अथाह एवं भयावनी थी किन्तु वसुदेव के दोनों पुत्रों के लिए, जो कि ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं, यह युद्ध खिलवाड़ से अधिक नहीं था।

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः

समीहितेऽनन्तगुणः स्वलीलया ।

न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रह-

स्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

स्थिति—पालन; उद्भव—सृजन; अन्तम्—तथा संहार; भुवन-त्रयस्य—तीनों लोकों का; यः—जो; समीहिते—प्रभाव; अनन्त—अनन्त; गुणः—जिनके दिव्य गुण; स्व-लीलया—अपनी लीलाओं के रूप में; न—नहीं; तस्य—उसका; चित्रम्—अद्भुत; पर—विरोधी; पक्ष—पक्ष का; निग्रहः—दमन; तथा अपि—फिर भी; मर्त्यं—मनुष्य; अनुविधस्य—अनुकरण करने वाला; वर्ण्यते—वर्णन किया जाता है।

जो तीनों लोकों के सृजन, पालन और संहार को एकसाथ सम्पन्न करने वाले हैं तथा जो असीम दिव्य गुणों वाले हैं उनके लिए विरोधी दल का दमन कर देना आश्चर्यजनक नहीं है। फिर भी जब भगवान् मानव-आचरण का अनुकरण करते हुए ऐसा करते हैं, तो साधुगण उनके कार्यों का गुणगान करते हैं।

तात्पर्य : दार्शनिक अरस्तू ने एक बार तर्क प्रस्तुत किया था कि परमेश्वर शायद ही कभी मानवीय कार्यों में भाग लेता हो क्योंकि समस्त सामान्य कार्य ऐसे दैवी पुरुष के लिए अनुपयुक्त है, इसी प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती एक ऐसी ही बात उठाते हैं यद्यपि यह लगभग निश्चित है कि उन्होंने अरस्तू के ग्रंथ नहीं पढ़े होंगे। चूँकि कृष्ण समग्र ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं, तो क्या जब वे जरासन्ध से युद्ध करते हैं यह उनके लिए अरुचिकर विसंगति नहीं है ?

इसका उत्तर इस प्रकार है : भगवान् मनुष्य की भूमिका अदा करते हैं और अपनी ह्लादिनी शक्ति का प्रसार करते हुए अनिश्चय और सक्रियता से पूर्ण उल्लासजनक दिव्य लीलाएँ करते हैं। अपनी योग-

मायाशक्ति द्वारा वे मनुष्य की तरह प्रकट होते हैं और इस तरह हम पृथ्वी के रंगमंच पर उन्हें परम पुरुष की भूमिका अदा करते देख कर आनंद उठा सकते हैं। निस्सन्देह, घोर नास्तिक लोग तर्क पेश करेंगे कि चूँकि कृष्ण ईश्वर हैं, तो इसमें वास्तविक अनिश्चय कहाँ रहा? ऐसे संशयवादी कृष्ण की आकर्षक शक्ति को कभी समझ नहीं सकेंगे। भौतिक मंच पर भी सौन्दर्य तथा अभिनय का अपना मोहक औचित्य है। इसी तरह हम कृष्ण को उन्हीं के लिए प्रेम करते हैं, उन्हीं के लिए उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हैं और कृष्ण की लीलाओं का हम आनन्द लेते हैं क्योंकि वे सचमुच अपने में अद्भुत हैं। वास्तव में, कृष्ण किसी भौतिक अहंकारवश लीलाएँ नहीं करते अपितु हमारे आनन्द के लिए ही करते हैं। इस तरह आध्यात्मिक लीलाओं का प्रस्तुतीकरण उन शुद्ध हृदय वाले जीवों के असीम दिव्य आनंद के लिए है, जो ईश्वर से ईर्ष्या नहीं करते और यह कृष्ण द्वारा सम्पन्न प्रेम-कार्य है।

इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती गोपाल तापनी उपनिषद से एक महत्त्वपूर्ण श्लोक उद्धृत करते हैं—*नराकृति परब्रह्म कारणमानुषः*—परब्रह्म अपने निमित्त मनुष्य रूप में प्रकट होते हैं यद्यपि वे समस्त वस्तुओं के उद्गम हैं। इसी प्रकार से *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.३२) में कहा गया है—*यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्*—दिव्य आनन्द के स्रोत नित्य परब्रह्म उनके मित्र बन गये हैं।

जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम् ।  
हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

जग्राह—पकड़ लिया; विरथम्—रथविहीन; रामः—बलराम; जरासन्धम्—जरासन्ध को; महा—अत्यन्त; बलम्—बलवान; हत—मारी गई; अनीक—सेना; अवशिष्ट—शेष; असुम्—श्वास; सिंहः—एक सिंह; सिंहम्—दूसरे सिंह को; इव—सदृश; ओजसा—बलपूर्वक ।

रथविहीन होने तथा सारे सैनिक मारे जाने से जरासन्ध के पास केवल श्वास शेष थी। उस समय बलराम ने उस बलशाली योद्धा को उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह एक सिंह दूसरे सिंह को पकड़ लेता है।

बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ।  
वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

बध्यमानम्—बाँधे जाते समय; हत—मारा गया; अरातिम्—शत्रु को; पाशैः—रस्सियों से; वारुण—वरुणदेव की; मानुषैः—  
तथा सामान्य मनुष्यों की; वारयाम् आस—रोका; गोविन्दः—कृष्ण ने; तेन—उसके ( जरासन्ध ) द्वारा; कार्य—कुछ काम;  
चिकीर्षया—करने की इच्छा से।

अनेक शत्रुओं का वध करने वाले बलराम, जरासन्ध को वरुण के दैवी-पाश से तथा अन्य  
लौकिक रस्सियों से बाँधने लगे। किन्तु गोविन्द को अभी जरासन्ध के माध्यम से कुछ कार्य  
करना शेष था अतः उन्होंने बलराम से रुक जाने के लिए कहा।

तात्पर्य : हतारातिम् का अर्थ है “जिसने अपने शत्रुओं को मार दिया है” या “जिसके माध्यम से  
उसके शत्रु मारे जायेंगे।” यह विचारपूर्ण टिप्पणी श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने की है।

सा मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसम्मतः ।  
तपसे कृतसङ्कल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३२ ॥  
वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि ।  
स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह, जरासन्ध; मुक्तः—छोड़ दिया गया; लोक-नाथाभ्याम्—दोनों लोकेश्वरों द्वारा; व्रीडितः—लज्जित; वीर—वीरों से;  
सम्मतः—आदरित; तपसे—तपस्या करने; कृत-सङ्कल्पः—मन को पक्का करके; वारितः—रोका गया; पथि—मार्ग में;  
राजभिः—राजाओं द्वारा; वाक्यैः—वाक्यों द्वारा; पवित्र—शुद्ध करने वाला; अर्थ—अर्थ वाला; पदैः—शब्दों के द्वारा;  
नयनैः—तर्क से; प्राकृतैः—संसारी; अपि—भी; स्व—निजी; कर्म-बन्ध—गत कर्म के न बच पाने वाले फल के कारण;  
प्राप्तः—प्राप्त; अयम्—यह; यदुभिः—यदुओं द्वारा; ते—तुम्हारी; पराभवः—हार।

जरासन्ध जिसको योद्धा अत्यधिक सम्मान देते थे, जब ब्रह्माण्ड के दोनों स्वामियों ने उसे  
छोड़ दिया तो वह अत्यन्त लज्जित हुआ और उसने तपस्या करने का निश्चय किया। किन्तु मार्ग में  
कई राजाओं ने आध्यात्मिक ज्ञान तथा संसारी तर्कों के द्वारा उसे आश्चस्त किया कि उसे  
आत्मोत्सर्ग का विचार त्याग देना चाहिए। उन्होंने उससे कहा, “यदुओं द्वारा आपको हराया जाना  
तो आपके गत कर्मों का परिहार्य फल है।”

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ।  
उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

हतेषु—मारे जाने पर; सर्व—सारे; अनीकेषु—सेना के सारे सैनिक; नृपः—राजा; बार्हद्रथः—बृहद्रथ का पुत्र, जरासन्ध; तदा—  
तब; उपेक्षित ह—उपेक्षित; भगवता—भगवान् द्वारा; मगधान्—मगध राज्य में; दुर्मनाः—उदास; ययौ—चला गया।

अपनी सारी सेना मारी जाने तथा स्वयं भी भगवान् द्वारा उपेक्षित होने से बृहद्रथ-पुत्र राजा  
जरासन्ध उदास मन से अपने राज्य मगध को लौट गया।

मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ।  
विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रीदशैरनुमोदितः ॥ ३५ ॥  
मथुरैरुपसङ्गम्य विञ्चरैर्मुदितात्मभिः ।  
उपगीयमानविजयः सूतमागधवन्दिभिः ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

मुकुन्दः—कृष्ण; अपि—भी; अक्षत—बाल बाँका न होने से; बलः—अपनी सेना; निस्तीर्ण—पार कराकर; अरि—अपने शत्रु की; बल—सेना के; अर्णवः—समुद्र; विकीर्यमाणः—उन पर बरसाये गये; कुसुमैः—फूलों से; त्रिदशैः—देवताओं द्वारा; अनुमोदितः—बधाई दिये गये; मथुरैः—मथुरा के लोगों के द्वारा; उपसङ्गम्य—मिलकर; विञ्चरैः—ज्वर से मुक्त; मुदित-आत्मभिः—अतीव हर्ष से युक्त; उपगीयमान—गीत गाये जाकर; विजयः—विजय; सूत-मागध—पुराण के गायक; वन्दिभिः—वन्दीजनों द्वारा ।

भगवान् मुकुन्द ने अक्षत अपनी पूर्णतः सेना के द्वारा अपने शत्रु की सेनाओं के समुद्र को पार कर लिया था। स्वर्ग के निवासियों ने उन पर फूलों की वर्षा करते हुए उन्हें बधाइयाँ दीं। मथुरा के निवासी अपनी ज्वरयुक्त चिन्ता से मुक्त होकर तथा हर्ष से पूरित होकर उनसे मिलने के लिए बाहर निकल आये और सूतों, मागधों तथा वन्दीजनों ने उनकी विजय की प्रशंसा में गीत गाये।

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ।  
वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥ ३७ ॥  
सिक्तमार्गा हृष्टजनां पताकाभिरभ्यलङ्कताम् ।  
निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

शङ्ख—शंख; दुन्दुभयः—तथा दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजने लगीं; भेरी—ढोल; तूर्याणि—तथा तुरहियाँ; अनेकशः—एकसाथ कई; वीणा-वेणु-मृदङ्गानि—वीणा, बाँसुरी तथा मृदंग; पुरम्—नगर में; प्रविशति—उनके प्रवेश करते ही; प्रभौ—प्रभु; सिक्त—पानी से सींचा गया; मार्गाम्—रास्तों का; हृष्ट—प्रसन्न; जनाम्—नागरिकों की; पताकाभिः—पताकाओं से; अभ्यलङ्कताम्—खूब सजाया गया; निर्घुष्टाम्—प्रतिध्वनित; ब्रह्म—वेदों के; घोषेण—उच्चारण से; कौतुक—उत्सवपूर्ण; आबद्ध—आभूषण; तोरणाम्—प्रवेशद्वारों पर ।

ज्योंही भगवान् ने नगरी में प्रवेश किया, शंख तथा दुन्दुभियाँ बजने लगीं और अनेक ढोल, तुरहियाँ, वीणा, वंशी तथा मृदंग एकसाथ बजने लगे। रास्तों को जल छिड़का गया था, सर्वत्र पताकाएँ लगी थीं तथा प्रवेशद्वारों को समारोह के लिए सजाया गया था। उसके नागरिक उत्साहित थे और नगरी वैदिक स्तोत्रों के उच्चारण से गूँज रही थी।



निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ।  
निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ३९ ॥

**शब्दार्थ**

निचीयमानः—उन पर बिखेरकर; नारीभिः—स्त्रियों द्वारा; माल्य—फूलों की मालाएँ; दधि—दही; अक्षत—लईया; अङ्कुरैः—  
तथा अंकुर; निरीक्ष्यमाणः—देखे जा रहे; स-स्नेहम्—स्नेहपूर्वक; प्रीति—प्रेमवश; उत्कलित—फैली हुई; लोचनैः—आंखों से।

ज्योंही नगरी की स्त्रियों ने भगवान् पर स्नेहयुक्त दृष्टि डाली, उनके नेत्र प्रेमवश खुले के खुले  
रह गये। उन्होंने भगवान् पर फूल-मालाएँ, दही, अक्षत तथा नवांकुरों की वर्षा की।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण द्वारा मथुरा में प्रवेश करते समय यह सब हुआ।

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ।  
यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४० ॥

**शब्दार्थ**

आयोधन-गतम्—युद्धभूमि में गिरी हुई; वित्तम्—बहुमूल्य सामग्री; अनन्तम्—अनगिनत; वीर—वीरों के; भूषणम्—आभूषण;  
यदु-राजाय—यदुओं के राजा, उग्रसेन को; तत्—वह; सर्वम्—सब; आहृतम्—लाई गई; प्रादिशत्—भेंट की; प्रभुः—भगवान्  
ने।

तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण ने यदुराज को वह सारी सम्पत्ति लाकर भेंट की जो युद्धभूमि में  
गिरी थी अर्थात् जो मृत योद्धाओं के अनगिनत आभूषणों के रूप में थी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि घोड़ों तथा अन्य पशुओं से भी रत्नजटित आभूषण  
एकत्र किये गये थे। यहाँ पर अति शंकालु मनुष्य की जानकारी हेतु यह बतला दिया जाय कि जरासन्ध  
इस स्पष्ट उद्देश्य से मथुरा आया था कि वह कृष्ण तथा बलराम सहित नगरी के सारे लोगों की हत्या  
कर देगा। भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा से बद्धजीवों को मजा चखा कर उनकी सहायता करते हैं  
जिससे वे प्रकृति के नियमों तथा भगवान् के अस्तित्व के विषय में अधिक संवेदनशील बनें। अन्ततः  
कृष्ण ने जरासन्ध तथा युद्धभूमि में मारे गये अन्य वीरों को मुक्ति प्रदान की। भगवान् बड़े कठोर हैं  
किन्तु द्वेषपूर्ण नहीं। वस्तुतः वे दया के सागर हैं।

एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः ।  
युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णापालितैः ॥ ४१ ॥

**शब्दार्थ**

एवम्—इस प्रकार; सप्त-दश—सत्रह; कृत्वः—बार; तावति—इतने पर भी ( हारने पर ); अक्षौहिणी—कई अक्षौहिणी वाली;  
बलः—सैनिक-शक्ति; युयुधे—युद्ध किया; मागधः राजा—मगध के राजा ने; यदुभिः—यदुओं से; कृष्णा-पालितैः—कृष्ण  
द्वारा सुरक्षित।

मगध का राजा इसी तरह से सत्रह बार पराजित होता रहा। फिर भी इन पराजयों में वह अपनी कई अक्षौहिणी सेनाओं से यदुवंश की उन सेनाओं के विरुद्ध लड़ता रहा जो श्रीकृष्ण द्वारा संरक्षित थीं।

अक्षिण्वंस्तद्वलं सर्वं वृष्णायः कृष्णातेजसा ।  
हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽगादरिभिर्नृपः ॥ ४२ ॥

#### शब्दार्थ

अक्षिण्वन्—नष्ट कर दी; तत्—उसकी; बलम्—सेना; सर्वम्—सारी; वृष्णायः—वृष्णियों ने; कृष्णा-तेजसा—भगवान् कृष्ण की शक्ति से; हतेषु—मृत होने पर; स्वेषु—अपनी; अनीकेषु—सेना के; त्यक्तः—छोड़ा गया; अगात्—चला जाता; अरिभिः—शत्रुओं द्वारा; नृपः—राजा, जरासन्ध।

भगवान् कृष्ण की शक्ति से, वृष्णिजन जरासन्ध की सारी सेना को नष्ट करते रहे और जब उसके सारे सैनिक मार डाले जाते तो राजा ( जरासन्ध ) अपने शत्रुओं द्वारा छोड़ दिये जाने पर पुनः वहाँ से चला जाता।

अष्टादशम सङ्ग्राम आगामिनि तदन्तरा ।  
नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४३ ॥

#### शब्दार्थ

अष्टा-दशम—अठारहवें; सङ्ग्रामे—युद्ध में; आगामिनि—घटित होने वाले; तत्-अन्तरा—उस बीच; नारद—नारदमुनि द्वारा; प्रेषितः—भेजा हुआ; वीरः—योद्धा; यवनः—बर्बर ( कालयवन नामक ); प्रत्यदृश्यत—प्रकट हुआ।

जब अठारहवाँ युद्ध होने ही वाला था, तो कालयवन नामक एक बर्बर योद्धा, जिसे नारद ने भेजा था, युद्ध-क्षेत्र में प्रकट हुआ।

रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ।  
नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीश्रुत्वात्मसम्मितान् ॥ ४४ ॥

#### शब्दार्थ

रुरोध—घेर लिया; मथुराम्—मथुरा नगरी को; एत्य—आकर; तिसृभिः—तीन गुना; म्लेच्छ—बर्बरों से; कोटिभिः—एक करोड़; नृ-लोके—मनुष्यों में; च—तथा; अप्रतिद्वन्द्वः—जिसका कोई उपयुक्त प्रतिद्वन्दी न हो; वृष्णीन्—वृष्णियों को; श्रुत्वा—सुनकर; आत्म—अपनी ही; सम्मितान्—जोड़ वाला।

मथुरा आकर इस यवन ने तीन करोड़ बर्बर ( म्लेच्छ ) सैनिकों समेत इस नगरी में घेरा डाल दिया। उसे कभी अपने से लड़ने योग्य प्रतिद्वन्दी व्यक्ति नहीं मिला था किन्तु उसने सुना था कि वृष्णिजन उसकी जोड़ के हैं।

**तात्पर्य :** श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कालयवन के इतिहास के बारे में *विष्णु पुराण* से उद्धरण दिया है : “एक बार गार्ग्य के साले ने मजाक में उन्हें नपुंसक कह दिया और जब यादवों ने इसे सुना तो वे जी भरकर हँसे। इस हँसी से क्रुद्ध होकर गार्ग्य दक्षिण दिशा में यह सोचते हुए चल पड़े, “भगवान् मुझे एक पुत्र दो, जो इन यादवों के लिए आतंक बन सके।” उन्होंने लोहे का चूर्ण खाकर महादेव की पूजा की और बारह वर्ष बाद उन्हें इच्छित वर मिला। वे खुशी खुशी घर लौट आये।

बाद में जब यवनों के सन्तानहीन राजा ने उनसे एक पुत्र के लिए प्रार्थना की तो गार्ग्य ने यवन की स्त्री से एक पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम कालयवन था। उनमें शिव के महाकाल-रूप जैसा क्रोध था। एक बार कालयवन ने नारद से पूछा, “इस समय पृथ्वी पर कौन सबसे बलवान राजा हैं?” नारद ने उत्तर दिया कि यदु लोग हैं। इस तरह नारद द्वारा बताए जाने पर कालयवन मथुरा में प्रकट हुआ।”

तं दृष्ट्वाचिन्तयत्कृष्णः सङ्कर्षण सहायवान् ।  
अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४५ ॥

#### शब्दार्थ

तम्—उसको; दृष्ट्वा—देखकर; अचिन्तयत्—सोचा; कृष्णः—कृष्ण ने; सङ्कर्षण—बलराम द्वारा; सहाय-वन्—सहायता पहुँचाया हुआ; अहो—आह; यदूनाम्—यदुओं के लिए; वृजिनम्—समस्या; प्राप्तम्—आई हुई; हि—निस्सन्देह; उभयतः—दोनों ओर से ( कालयवन से तथा जरासन्ध से ); महत्—महान्।

जब भगवान् कृष्ण तथा भगवान् संकर्षण ने कालयवन को देखा तो कृष्ण ने स्थिति पर विचार किया और कहा, “ओह! अब तो यदुओं पर दो ओर से संकट आ पड़ा है।”

**तात्पर्य :** यहाँ हम देख सकते हैं कि यद्यपि कृष्ण ने जरासन्ध को सत्रह बार अनेक विषमताओं के होते हुए पराजित किया था फिर भी उन्होंने कालयवन की सेना का तुरन्त संहार नहीं किया और इस तरह शिवजी द्वारा गार्ग्य को दिये गये वर को अक्षत रखा जैसाकि पिछले श्लोक के तात्पर्य में बताया गया है।

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ।  
मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वागमिष्यति ॥ ४६ ॥

#### शब्दार्थ

यवनः—विदेशी बर्बर, म्लेच्छ; अयम्—यह; निरुन्धे—विरोध कर रहा है; अस्मान्—हमको; अद्य—आज; तावत्—तब तक; महा-बलः—अत्यन्त बलवान; मागधः—जरासन्ध; अपि—भी; अद्य—आज; वा—अथवा; श्वः—कल; वा—अथवा; पर-श्वः—परसों; वा—अथवा; आगमिष्यति—आयेगा।

“हमें यह यवन पहले से घेरे हुए है और शीघ्र ही यदि आज नहीं, तो कल या परसों तक मगध का बलशाली राजा यहाँ आ पहुँचेगा।”

आवयोः युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ।  
बन्धून्हनिष्यत्यथ वा नेष्यते स्वपुरं बली ॥ ४७ ॥

#### शब्दार्थ

आवयोः—हम दोनों; युध्यतोः—लड़ते हुए; अस्य—उससे ( कालयवन से ); यदि—यदि; आगन्ता—आता है; जरा-सुतः—जरा का पुत्र; बन्धून्—हमारे सम्बन्धी; हनिष्यति—मार डालेगा; अथ वा—या फिर; नेष्यते—ले जायेगा; स्व—अपनी; पुरम्—नगरी में; बली—बलवान।

“यदि हमारे दोनों के कालयवन से युद्ध करने में संलग्न रहते समय, बलशाली जरासन्ध आता है, तो वह या तो हमारे सम्बन्धियों को मार सकता है या फिर उन्हें पकड़कर अपनी राजधानी ले जा सकता है।”

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ।  
तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४८ ॥

#### शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; अद्य—आज; विधास्यामः—बनायेंगे; दुर्गम्—किला; द्विपद—मनुष्यों के लिए; दुर्गमम्—दुर्गम; तत्र—वहाँ; ज्ञातीन्—अपने परिवार वालों को; समाधाय—रखकर; यवनम्—बर्बर को; घातयामहे—हम मार डालेंगे।

“अतः हम तुरन्त ऐसा किला बनायेंगे जिसमें मानवी सेना प्रवेश न कर पाये। अपने पारिवारिक जनों को उसमें वसा देने के पश्चात् हम म्लेच्छराज का वध करेंगे।”

इति सम्मन्त्र्य भगवान्दुर्गं द्वादशयोजनम् ।  
अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥ ४९ ॥

#### शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; सम्मन्त्र्य—सलाह करके; भगवान्—भगवान् ने; दुर्गम्—किला; द्वादश-योजनम्—बारह योजन का ( लगभग १०० मील ); अन्तः—भीतर; समुद्रे—समुद्र के; नगरम्—नगर; कृत्स्न—हर वस्तु से युक्त; अद्भुतम्—अद्भुत; अचीकरत्—बनवा दिया।

इस तरह बलराम से सलाह करने के बाद भगवान् ने समुद्र के भीतर बारह योजन परिधि वाला एक किला बनवाया। इस किले के भीतर उन्होंने एक ऐसा नगर बनाया जिसमें एक से एक बढ़ कर अद्भुत वस्तुएँ उपलब्ध थीं।

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ।  
 रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५० ॥  
 सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ।  
 हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५१ ॥  
 राजतारकुटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलङ्कृतैः ।  
 रत्नकूतैर्गृहैर्हेमैर्महामारकतस्थलैः ॥ ५२ ॥  
 वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वल्लभीभिश्च निर्मितम् ।  
 चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५३ ॥

### शब्दार्थ

दृश्यते—देखा जाता था; यत्र—जिसमें; हि—निस्सन्देह; त्वाष्ट्रम्—त्वाष्ट्र ( विश्वकर्मा ) का; विज्ञानम्—वैज्ञानिक ज्ञान; शिल्प—शिल्पकला में; नैपुणम्—निपुणता; रथ्या—मुख्य मार्गों सहित; चत्वर—चौराहा या चौक; वीथीभिः—तथा व्यापारिक मार्गों से; यथा-वास्तु—काफी बड़े भू-खण्ड पर; विनिर्मितम्—बनाया हुआ; सुर—देवताओं के; द्रुम—वृक्षों; लता—तथा लताओं से युक्त; उद्यान—बगीचों; विचित्र—विचित्र; उपवन—तथा पार्कों; अन्वितम्—से युक्त; हेम—स्वर्ण; शृङ्गैः—चोटी से युक्त; दिवि—आकाश को; स्पृग्भिः—स्पर्श करते हुए; स्फटिका—स्फटिक के; अट्टाल—अटारियाँ; गोपुरैः—दरवाजों से युक्त; राजत—चाँदी के; आरकुटैः—तथा पीतल के; कोष्ठैः—कोषागार, भंडार, अस्तबल आदि से युक्त; हेम—स्वर्ण; कुम्भैः—घड़ों से; अलङ्कृतैः—सुसज्जित; रत्न—रत्नजटित; कूतैः—चोटियों वाले; गृहैः—घरों से; हेमैः—सोने के; महा-मारकत—बहुमूल्य मरकत मणियों से; स्थलैः—फर्श से युक्त; वास्तोः—घर-बार के; पतीनाम्—अधिष्ठाता देवों के; च—तथा; गृहैः—मन्दिरों से; वल्लभीभिः—चौकसी बुर्जों से; च—तथा; निर्मितम्—बनाये गये; चातुः-वर्ण्य—चारों वर्णों के; जन—लोगों से; आकीर्णम्—पूरित; यदु-देव—यदुओं के स्वामी, श्रीकृष्ण का; गृह—घरों से; उल्लसत्—अलंकृत।

उस नगर के निर्माण में विश्वकर्मा के पूर्ण विज्ञान तथा शिल्पकला को देखा जा सकता था।

उसमें चौड़े मार्ग, व्यावसायिक सड़कें तथा चौराहे थे, जो विस्तृत भू-खण्ड में बनाये गये थे। उसमें भव्य पार्क थे और स्वर्ण-लोक से लाये गये वृक्षों तथा लताओं से युक्त बगीचे भी थे। उसके गोपुर के मीनारों के ऊपर सोने के बुर्ज थे, जो आकाश को चूम रहे थे। उनकी अटारियाँ स्फटिक मणियों से बनी थीं। सोने से आच्छादित घरों के सामने का भाग सुनहरे घड़ों से सजाया गया था और उनकी छतें रत्नजटित थीं तथा फर्श में बहुमूल्य मरकत मणि जड़े थे। घरों के पास ही कोषागार, भंडार तथा आकर्षक घोड़ों के अस्तबल थे, जो चाँदी तथा पीतल के बने हुए थे। प्रत्येक आवास में एक चौकसी बुर्जी थी और घरेलू अर्चाविग्रह के लिए मन्दिर था। यह नगर चारों वर्णों के लोगों से पूरित था और यदुओं के स्वामी श्रीकृष्ण के महलों के कारण विशेष रूप से अलंकृत था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी बतलाते हैं कि राजमार्ग ( रथ्याः ) सामने की ओर थे और गौण मार्ग ( वीथ्यः ) पीछे थे और इन दोनों के मध्य में चौराहे ( चत्वराणि ) थे। इन चौराहों के भीतर चहारदीवारियाँ थीं जिनके भीतर सुनहरे आवासगृह थे जिनके ऊपरी भाग में चौकसी बुर्जियाँ थीं जिन

पर सुनहरे घड़े रखे थे। इस तरह सारी इमारतें कई मंजिला थीं। वास्तु शब्द सूचित करता है कि घर तथा इमारतें पर्याप्त भू-खण्ड पर बनी थीं जिससे हरियाली के लिए काफी गुंजाईश थी।

सुधर्मा पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ।  
यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मेन युज्यते ॥ ५४ ॥

#### शब्दार्थ

सुधर्मा—सुधर्मा नामक सभागार; पारिजातम्—पारिजात वृक्ष; च—तथा; महा-इन्द्रः—स्वर्ग के राजा इन्द्र ने; प्राहिणोत्—लाकर दिया; हरेः—कृष्ण को; यत्र—जिसमें ( सुधर्मा में ); च—तथा; अवस्थितः—स्थित; मर्त्यः—मर्त्य, मरणशील; मर्त्यधर्मेः—मरने के नियमों से; न युज्यते—प्रभावित नहीं है।

इन्द्र ने श्रीकृष्ण के लिए सुधर्मा सभागार ला दिया जिसके भीतर खड़ा मनुष्य मृत्यु के नियमों से प्रभावित नहीं होता। इन्द्र ने पारिजात वृक्ष भी लाकर दिया।

श्यामैकवर्णान्वरुणो हयान्शुक्लान्मनोजवान् ।  
अष्टौ निधिपतिः कोशान्लोकपालो निजोदयान् ॥ ५५ ॥

#### शब्दार्थ

श्याम—गहरा नीला; एक—नितान्त; वर्णान्—रंग का; वरुणः—सागरों का शासक वरुण; हयान्—घोड़े; शुक्लान्—सफेद; मनः—मन ( की तरह के ); जवान्—तेज; अष्टौ—आठ; निधि-पतिः—देवताओं का कोषाध्यक्ष, कुवेर; कोशान्—खजाने को; लोक-पालः—विभिन्न लोकों के शासक; निज—अपने; उदयान्—ऐश्वर्य विभूति।

वरुण ने मन के समान वेग वाले घोड़े दिये जिनमें से कुछ शुद्ध श्याम रंग के थे और कुछ सफेद थे। देवताओं के कोषाध्यक्ष कुवेर ने अपनी आठों निधियाँ दीं और विभिन्न लोकपालों ने अपने अपने ऐश्वर्य प्रदान किये।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है—“कोष का स्वामी कुवेर है और आठ कोष ही उसकी निधियाँ हैं। ये इस प्रकार हैं—

पद्मश्चैव महापद्मो मत्स्यकूर्मो तथौदकः ।

नीलो मुकुन्दः शंखश्च निधयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥

“आठ निधियाँ हैं—पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, औदक, नील, मुकुन्द तथा शंख।”

यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ।  
सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५६ ॥

#### शब्दार्थ

यत् यत्—जो जो; भगवता—भगवान् द्वारा; दत्तम्—दी गई; आधिपत्यम्—नियंत्रण करने की प्रदत्त शक्ति; स्व—निजी; सिद्धये—अधिकार जताने की सुविधा के लिए; सर्वम्—सारी; प्रत्यर्पयाम् आसुः—वापस दे दीं; हरौ—कृष्ण को; भूमि—पृथ्वी में; गते—आये हुए; नृप—हे राजा ( परीक्षित )।

हे राजन्, जब भगवान् पृथ्वी पर आ गये तो इन देवताओं ने उन सभी सिद्धियों को उन्हें अर्पित कर दिया जो उन्हें अपने विशेष अधिकार के निष्पादन के लिए पहले प्राप्त हुई थीं।

तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः ।  
प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ।  
निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५७ ॥

#### शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; योग—अपनी योगशक्ति के; प्रभावेन—प्रभाव से; नीत्वा—लाकर; सर्व—सभी; जनम्—अपनी प्रजा को; हरिः—भगवान् कृष्ण; प्रजा—नागरिकों के; पालेन—रक्षक; रामेण—बलराम द्वारा; कृष्णः—कृष्ण ने; समनुमन्त्रितः—सलाह की; निर्जगाम—बाहर चले गये; पुर—नगर के; द्वारात्—द्वार से; पद्म—कमल के फूलों की; माली—माला पहन कर; निरायुधः—बिना हथियार के।

अपनी योगमाया-शक्ति के बल से जब भगवान् कृष्ण ने अपनी सारी प्रजा को नये नगर में पहुँचा दिया तो उन्होंने बलराम से सलाह की जो मथुरा में उसकी रक्षा करने के लिए रह गये थे। तब गले में कमल के फूलों की माला पहने और बिना हथियार के भगवान् कृष्ण मुख्य दरवाजे से होकर मथुरा से बाहर चले गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कृष्ण द्वारा सारे नागरिकों को मथुरा से द्वारका स्थानान्तरित किये जाने का वर्णन प्रस्तुत करने के लिए श्री पद्म पुराण के उत्तर खण्ड से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

सुषुप्तान् मथुरायान्तु पौरांस्तत्र जनार्दनः ।  
उद्धृत्य सहसा रात्रौ द्वारकायां न्यवेशयत् ॥  
प्रबुद्धास्ते जनाः सर्वे पुत्रदारसमन्विताः ।  
हैमहर्म्यतले विष्टा विस्मयं परमं ययुः ॥

“अर्धरात्रि में, जब मथुरावासी सोये हुए थे तो भगवान् जनार्दन ने सहसा उन्हें उस नगरी से हटाकर द्वारका में लाकर रख दिया। जब लोग जागे तो अपने आपको, अपने पुत्रों को तथा पत्नियों को सोने से बने महलों के भीतर पाकर चकित थे।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत “कृष्ण द्वारा द्वारकापुरी की स्थापना” नामक पचासवें अध्याय के श्रीलप्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए